## अध्याय ·1·

# असंगत नाटक : सैद्धान्तिक विवेचन

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR
SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

## अध्याय : 1

# असंगत नाटक : सैद्धान्तिक विवेचन

### भूमिका -

नाटक साहित्य का सबसे रमणीय अंग माना जाता है। साहित्य की अन्य विधाओं के समान वर्णित जीवन की कल्पना करने की आवश्यकता नाटक में नहीं पडती; क्योंकि उसमें हम पात्रों के जीवन को ही अपने सामने देखते हैं। नाटक के रसास्वादन के लिए किसी भी प्रकार की पूर्ववर्ती दक्षता भी आवश्यक नहीं होती। इसके अतिरिक्त स्त्री-पुरुष, बालक-बूढ़े, शिक्षित-अशिक्षित नागरिक-ग्रामीण सभी नाटक देखने या केवल पढ़ने से भी उसका आनंद प्राप्त कर सकते हैं। नाटक में भूत और भविष्य दोनों ही वर्तमान के रूप में देखे जा सकते हैं। इसके साथ ही साथ नृत्य, संगीत आदि कलाओं के कारण नाटक अधिक रमणीय बन जाता है। मंचीयता नाटक का प्राणतत्त्व है। मानव जीवन की संगत-असंगत प्रवृत्तियों को रंगमंच पर एक साथ देखा जा सकता है।

### स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : विभिन्न प्रवृत्तियाँ-

स्वातंत्र्योत्तर काल में हिन्दी नाटकों का विकास द्रुत गति से हुआ। विषय और शिल्प दोनों दृष्टियों से नाटक अधिक समृद्ध और सुविकसित हुए। युग-विशेष का साहित्य जहाँ पूर्ववर्ती साहित्य से जुड़ा होता हैं, वहाँ समसामयिक वातावरण और रचना प्रवृत्तियों का भी उस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। इस कारण युगीन वातावरण, परिस्थितियों और नवीन प्रभावों ने हिन्दी नाटककारों को नयी दृष्टि दी। यद्यपि इस काल में भी कुछ नाटककार अपनी पूर्व परम्परा से जुड़े रहें, तथापि कुछ नये नाटककारों ने नाट्य-रचना की नयी दृष्टि, नयी वस्तु एवं नये शिल्प का प्रयोग करते हुए कुछ नव्य जीवन बोध को अंकित किया है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटकों में विषय की दृष्टि से काफी विविधता दृष्टिगोचर होती है। डॉ·नरनारायण राय के शब्दों में- "इनमें स्त्री-पुरुष संबंध की सूक्ष्म विश्लेषणात्मक

दृष्टि के साथ पारिवारिक बिखराव, प्रेम और यौन समस्याएँ, महानगरों की अपरिचित भीड़ आर्थिक विषमता की वृद्धि, राजनीति की दिशाहीनता, शोषण एवं भ्रष्टाचार जैसी अनेक नयी, गंभीर और ज्वलंत समस्याएँ प्रतिफलित की गई हैं।"[1] इस प्रकार स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य क्षेत्र में कई नये प्रयोग किये गये। वास्तव में "नाटक और रंगमंच में नवीन प्रवृत्तियों या रूढ़ियों के बहिष्कार के साथ अप्रचलित या अपूर्व तत्वों के समावेश को हम प्रयोग कह सकते हैं, और प्रयोग की इस प्रवृत्ति को प्रयोगधर्मिता।"[2] इस दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाट्य साहित्य में लोक-नाट्य परम्परा, काव्य-नाटक, अनूदित नाटक, नुक्कड नाटक, बाल रंगमंच, कविता, कहानी और उपन्यास के नाट्य रूपांतर या मंचन तथा असंगत नाट्य-शिल्प आदि अनेक नये प्रयोग परिलक्षित होते हैं।

इस काल में विषयों की इस विविधरूपता के साथ नाटक के रचना-विधान और रंगमंच की दृष्टि से भी कई नये प्रयोग हुए हैं। अनेकांकी नाटक, एकांकी नाटक, रेडियो नाटक, गीति नाटक तथा प्रतीकात्मक नाटक के अतिरिक्त नृत्य-नाट्य, भाव-नाट्य, छाया-नाटक, संगीत रूपक, एक पात्रीय नाटक, लघु-नाटक, सिने-नाटक, आपेरा आदि नये टेकनीकों का प्रयोग हो रहा है। नेपथ्य से उद्घोषणा, रिपोर्ताज, रेडियो फीचर, उपक्रम, उपसंहार तथा सूत्रधार से कथा-सूत्रों को जोड़ने की टेकनीक आदि नवीनताएँ हिन्दी नाटक को अधिक स्वाभाविक, लोकप्रिय एवं प्रभावशाली बनाने में अपना योगदान दे रही हैं। निश्चय ही विषय, चेतना और कला की दृष्टि से स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य में काफी परिवर्तन हुआ है। हिन्दी का असंगत नाट्य साहित्य इसी परिवर्तन की एक नयी धारा है।

"असंगत" शब्द प्रयोग -

हिन्दी में प्रयुक्त "असंगत" या "विसंगत" शब्द अंग्रेजी के ऐब्सर्ड (Absurd) के पर्यायवाची शब्द है। बृहत् अंग्रेजी-हिन्दी कोश में Absurd के अर्थ इस प्रकार दिये गये हैं- असंगत, विसंगत, अनर्थक, अर्थहीन, अनुचित, अयुक्त इ.।[3] मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश के अनुसार Absurd के अर्थ है- 1.अनर्थक, अयुक्त, असंगत, न्याय विरूद, ऊटपटाँग, 2.तर्कहीन, 3.मूर्खतापूर्ण, हास्यास्पद, वाहियात, लचर, 4.अर्थहीन, बेतुका।[4] मानक हिन्दी कोश के प्रथम खंड में "असंगत" शब्द के अर्थ इस प्रकार दिये गये हैं- असंगत-वि. (सं.न.त.) [भाव-असंगति] 1.जो किसी से मिला, लगा या सटा न हो। 2.जिसकी किसी से संगति या मेल न बैठता हो। 3.जो प्रस्तुत विषय के विचार से उचित, उपयुक्त अथवा समीचीन न हो।[5] इसी कोश के पाँचवे खंड में "विसंगत" शब्द के अर्थ इस प्रकार

दिये गये हैं- विसंगत-वि·(सं·ब·स·तृ·त·वा) जो संयत न हो। जिसके साथ संगति न बेठती हो। बे-मेल।[6] अमेरिकना विश्वकोश खंड 1 के अनुसार "ऐब्सर्ड" (Absurd) संज्ञा का प्रयोग मूलतः तर्क के नियमों के भंग को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। वह आधुनिक अध्यात्म, दर्शन तथा विभिन्न कला-क्षेत्र में अशक्यप्राय बातों को प्राप्त करने की एक ऐसी चाह है जिसमें मानव की आध्यात्मिक तथा भावात्मक जरूरतों की परिपूर्ति के लिए परम्परागत मूल्यों का विघटन व्यक्त होता है।"[7]

काफ्फा पर लिखे अपने एक निबंध में यूजिन आयनेस्को ने लिखा है- "विसंगत अर्थात एब्सर्ड वह है जो प्रयोजनहीन है···जो धर्म, अध्यात्म और अनुभवातीत सूत्रों से कटा है, ऐसे आदमी के सब क्रिया-व्यापार व्यर्थ, उलजलूल, अर्थहीन होते है।"[8] डॉ·गोविंद चातक के अनुसार "विसंगत" अथवा एब्सर्ड का सामान्य अर्थ होता है-विषम स्वर होना, सामंजस्यहीन, अतार्किक, असम्बद्ध, ऊलजलूल, हास्यास्पद आदि।[9] "वस्तुतः Absurd एक विशिष्ट और दार्शनिक प्रयोग है। सबसे पहले मार्टिन एसलिन ने इस शब्द की, इसके दर्शन की विस्तृत व्याख्या की। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी (1965) में इस शब्द को परिभाषित किया गया है। द पेंगुयन डिक्शनरी ऑफ थिएटर में जॉन रसेल टेलर कहता है कि यह शब्द 1950 के नाटककारों के एक विशेष से जुड़ा है- उन नाटककारों के समूह से जो अपने को किसी खास स्कूल का नहीं मानते, जो सृष्टि में मनुष्य की स्थिति के बारे में भिन्न ढंग से सोचते है।"[10]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी के "असंगत" या "विसंगत" शब्द अंग्रेजी के Absurd शब्द के हिन्दी रूपांतर हैं। "असंगत" अथवा "विसंगत" का सामान्य अर्थ यही है कि जो निरर्थक, तर्कहीन, संगतिहीन, असम्बद्ध, हास्यास्पद तथा ऊलजलूल होता है। अर्थात जिसमें कोई सरल अर्थ या संगति न हो वह असंगत है।

असंगति जीवन का अविभाज्य हिस्सा -

मनुष्य, चाहे वह पूरब का हो या पश्चिम का, पहले मनुष्य होता है और सभी मनुष्य अनुभूति के धरातल पर एक-से होते हैं। यही कारण है कि जीवन की विसंगतियाँ पूरब और पश्चिम सर्वत्र देखी जा सकती हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन-व्यवहार में कहीं न कहीं असंगत होता है। और इस अर्थ में असंगति आज के मानव जीवन का अविभाज्य हिस्सा बन गई है। अपने जीवन के लिए व्यक्ति जो परिवेश चाहता है, अक्सर उसे वह नहीं मिलता। उसके जीवन की यह बहुत बड़ी विडम्बना है कि जो वह चाहता है वह उसे मिलता नहीं और जो मिलता है उसे वह चाहता नहीं। परिणामस्वरूप जीवन का अधिकांश

हिस्सा परिवेश की असंगतियों में घटित हो जाता है। आज के विसंगत जीवन के बारे में डॉ॰रामजी तिवारी के विचार समाचीन ही हैं- "विसंगति और विडम्बना वर्तमान जीवन की विविध विद्रूपताओं एवं असंगतियों का फल है। जीवन-व्याप्त विशेषताओं को उद्घाटित करने एवं मार्मिक कथ्य में गहरे अर्थ बोध को सन्निवेशित करने के लिए यह एक उपयोगी उपकरण है।"[11]

विश्वयुद्धों, भौतिक वृत्तियों और मशीनी विकास के कारण मनुष्य का जीवन अनिश्चित, पराधीन और संकटग्रस्त बन गया है। आज का मनुष्य नीति-अनीति का विचार नहीं करता। नैतिकता के बंधन तोड़कर उसने अनैतिकता को ही नैतिकता के स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। धर्म के नाम पर भी प्रायः वह अधर्म को अपना रहा है। उसने हिंसा को अपना लिया है। विनाश और आतंक के माहोल में जैसे-तैसे जीवन यापन करने पर वह मजबूर है। उसका जीवन नीरस एवं शुष्क बन गया है। वह मुखौटा लगाकर घूम रहा है। न घटनाएँ उसके हाथ में हैं, न उनके परिणाम। इसी से उसके मन में ऊब, घुटन, कुंठा, निराशा, निष्क्रियता, अनैतिकता और संत्रास ने घर कर लिया है, जिसके परिणामस्वरूप टूटकर बिखर जाने के लिए वह बाध्य है।

समसामयिक युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विसंगतियाँ फैली हुई हैं। इन विसंगतियों के मध्य घिरे हुए आज के मानव का जीवन विसंगतियों का एक लम्बा सिलसिला बन गया है। डॉ॰रामसेवक सिंह के अनुसार- "वर्तमान परिस्थितियों के दायरे में उसका जीवन किसी शीशे के घर की तरह होता है जहाँ वास्तवता की छायाएँ अदृश्यतया एक-दूसरे में मिल जाती है और दर्शक को सम्भ्रम में डालती है। सामान्यतया वास्तवता स्वप्नों की तरह अनिश्चित और असंगत होती है।[12] इसमें संदेह नहीं कि राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि जीवन के सभी भौतिक क्षेत्रों में असंगतियों ने घर कर लिया है। आज राजनीति के क्षेत्र में काफी विसंगतियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। शासक अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए किसी भी हद तक गिर सकते हैं। वे अपनी सत्ता, पद और प्रतिष्ठा का उपयोग केवल स्वार्थ-सिद्धि के लिए करते हैं। जनता के दुःख जानकर उन्हें दूर करना तो दूर रहा, वे सही माने में उनसे परिचित भी नहीं हैं। नई-नई तरकीबें ईज़ाद कर जनता का शोषण करना ही उनका फर्ज़ बन गया है। मूल्यहीन आचरण उनकी नीति बन गया है और सत्तान्धता ने उन्हें स्वार्थी, भ्रष्टाचारी, अवसरवादी, सुविधाभोगी, एवं षड्यंत्रवादी बनाया है। सामान्य जनता में रक्षक को भक्षक बना देखकर मोहभंग की स्थितियाँ बनी हुई हैं। शासकों की सत्तान्धता में अटका हुआ हर व्यक्ति अपने आपको असहाय और लाचार

महसूस करता है। युग की इन असंगतियों के साथ वह समझौता भी नहीं कर सकता और डटकर उनका मुकाबला भी करना वह नहीं जानता। परिणामस्वरूप राजनीति के विसंगत परिवेश की दिशाहीन, मूल्यहीन परिस्थितियों में जीवन जीने के लिए वह मजबूर बन जाता है।

वर्तमान युग में व्यक्ति के जीवन में अर्थ को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त हुआ है। उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा अर्थ पर ही निर्भर करती है। जिसकी आर्थिक अवस्था गिरी हुई है, वह इस समाज में ठीक तरह से जी भी नहीं सकता। पग-पग पर उसे अर्थ की आवश्यकता महसूस होती है। मँहगाई इतनी बढ गई है कि प्राप्त अर्थ में जीवन यापन करना कठिन बन गया है। इस कारण मनुष्य सभी मानवीय मूल्यों को तोड़कर अर्थ जुटाने में व्यस्त है। अर्थ-प्राप्ति की इस अंधी दौड में उसकी सारी निष्ठाएँ, आस्थाएँ, धड़ाधड़ टूट रही हैं। समय ही धन है मानकर वह अपने हर क्षण का उपयोग धन जुटाने के लिए कर रहा है। न केवल पुरुष, बल्कि स्त्रियाँ भी इस अंधी दौड़ में अपनी पूरी शक्ति के साथ शरीक हैं। परिणामस्वरूप घर के छोटे-छोटे बच्चे माता-पिता के होते हुए भी अनाथ बन गये हैं।

आज की सामाजिक व्यवस्था में कोई भी व्यक्ति आत्मनिर्भर बनकर नहीं जी सकता, जीने के लिए उसे औरों का सहारा लेना ही पडता है। परिणामस्वरूप उसका व्यक्तित्त्व परवशता का शिकार बनकर रह जाता है। परवशता के कारण मनुष्य आँख होते हुए भी अंधा, कान होते हुए भी बहरा, जीभ होते हुए भी गूँगा तथा जीवित होते हुए भी मृत हो जाता है। इस दृष्टि से आज की सामाजिक व्यवस्था में हर व्यक्ति मरा हुआ है। वह जी रहा है केवल इसीलिए कि जीना उसकी मजबूरी है। अपने अस्तित्त्व को बनाये रखने के लिए विसंगत परिवेश की विद्रूपताओं को झेलकर किसी तरह अपना जीवन-ढोने के लिए वह बाध्य है। पर इस कोशिश में अन्दर ही अहन्दर वह पूर्ण रूप से ध्वंस्त हो जाता है।

वर्तमान जीवन-प्रणाली में सर्वत्र यांत्रिकता का बोलबाला है। औद्योगिकरण और मशीनीकरण का मनुष्य के भौतिक जीवन पर काफी असर हुआ है। आज का मनुष्य सुखी एवं समृद्ध जीवन जीने के लिए हर जगह यांत्रिकता का सहारा ले रहा है। इस अत्यधिक यांत्रिकता ने मनुष्य के जीवन को शुष्क, नीरस, कृत्रिम तथा संवेदनाहीन बना डाला है। हमेशा यंत्रो के सम्पर्क में रहने वाला मनुष्य स्वयं भी यंत्र बन गया है। यांत्रिकता ने उसे भावनाशून्य बना दिया है। यंत्र बनाने वाला मनुष्य आज यंत्रों का ही दास बना हुआ है, इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है ? जो यंत्र मनुष्य ने अपना भौतिक जीवन

समृद्ध करने के लिए ईजाद किये, आज वे ही यंत्र उसके जीवन के लिए अभिशाप बनकर उसके सामने खड़े हैं। यांत्रिकता के गलत इस्तेमाल के कारण मनुष्य का जीवन अनिश्चित एवं अंधकारमय हो गया है।

इस प्रकार मनुष्य का अधिकांश जीवन परिवेश की विसंगतियों में बीत जाता है। इन विसंगतियों के कारण मनुष्य के जीवन में निष्क्रियता, निरर्थकता,मूल्यहीनता,घटनाहीनता, निस्सारता, दिशाहीनता, जड़ता, भावनाहीनता,असहायता, क्रूरता, क्रमहीनता, असंगति, ऊब, व्यर्थता एवं अकेलापन छाया हुआ है। इन विसंगतियों ने उसकी श्रद्धा, आस्था, विवेक, संतुलन और नीति तथा आदर्श को विच्छेदित किया है।

**असंगति : मनोवैज्ञानिक आधार -**

समसामयिक युग में मनुष्य को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ता है। कभी-कभी इस संघर्ष में वह टूट भी जाता है। परिवेशजन्य ऊब, सामाजिक अलगाव, अकेलेपन की समस्या, यौन-भावनाओं की अतिशयता, संत्रास, बेरोजगारी, शोषण, महत्त्वहीनता तथा महानगरीय-बोध ने मनुष्य को अन्दर से तोड़ डाला है। उसके सारे कार्य अवचेतन और उपचेतन मन के द्वारा संचलित होने लगे हैं। कभी-कभी उसके आचरण में अन्दर और बाहर फर्क भी होता है। देवराज उपाध्याय के शब्दों में- "मनुष्य के चरित्र का वास्तविक आकलन और उसके साथ व्यवहार करने का उचित तरीका यही है हम उसकी बातों, व्यवहार तथा आचरण के face value पर न जाएं। ज्यों-का-त्यों उसी रूप में ग्रहण करने की चेष्टा न करें। परंतु यह देखें कि ये बाहरी आचरण और व्यवहार किन अचेतनस्थ प्रवृत्तियों अथवा-ग्रंथियों के प्रतीक हैं।"[13]

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद औद्योगिक-वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ मूल्य-विघटन और चेतना-अवमूल्यन भी काफी मात्रा में हुआ है। इससे मनुष्य का मानसिक अधःपतन हुआ है। उसके मन में रिसती भावनाओं ने घर कर लिया है। परिणामतः आपसी अपनत्त्व, भाई-चारा प्रायः टूटने लगा है। मानवीय भावनाओं की घोर उपेक्षा होने लगी है। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए मनुष्य मूल्यहीन आचरण करने लगा है। अपने आदर्श, नीति,संस्कार आदि की अंतेष्टि कर वह स्वार्थ-सिद्धि में जुटा हुआ है। उच्च वर्ग के नर तथा नारियों में कामुकता, हृदयहीनता तथा जघन्य अपराध-वृत्ति ने घर कर लिया है जिसके परिणामस्वरूप उनका व्यक्तित्त्व भी खंडित हुआ दृष्टिगोचर होता है।

समकालीन जीवन की असंगतियों ने पति-पत्नी के बीच भी एक दीवार खड़ी कर दी है। समकालीन परिवेश के कारण उन दोनों के बीच भी संवादहीनता, संबंधहीनता,

अज़नबीपन, भय, आतंक, तथा घृणा जैसी भावनाओं ने घर कर लिया है। परिणामतः कभी-कभी पति अपनी पत्नी को मारने पर उतारू हो जाता है या कभी-कभी पत्नी अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है। घर में रहकर भी उनमें संवाद नहीं होता। इसका परिणाम बच्चों पर भी होता है और उनका व्यक्तित्त्व बनने से पहले ही टूट जाता है।

समसामायिक युग में परम्परागत मूल्य, श्रद्धा, विश्वास, संस्कार, आदर्श, तेजी के साथ टूट रहे हैं। व्यक्ति आत्मकेंद्रित हुआ है। एक-दूसरे के साथ वह कटा-उखड़ा रहने लगा है। परस्पर विश्वसनीयता समाप्त हुई है। स्वसुख के लिए परपीड़न में भी वह आनंद अनुभव करता है। उसमें भावानाहीनता इस कदर बढ़ी है कि कभी-कभी वह हिंस्त्र, बर्बर पशु जैसा बर्ताव कर भुक्तभोगी, रक्तपिपासु और विक्षिप्त बन जाता है।

समसामयिक युग का मनुष्य मानसिक संतुलन ढल जाने के कारण स्वार्थी, पराधीन और निष्क्रिय बना हुआ है। उसका मन तथा मस्तिष्क प्रायः खाली रहता है। अल्प श्रम या बिना श्रम के ही वह स्वार्थ-सिद्धि चाहता है। युग के असंगत और दमघोंट परिवेश में उलझकर वह अपना आत्मविश्वास भी खो बैठता है। परिणामस्वरूप उसका व्यक्तित्त्व बौद्धिक नपुंसकता का शिकार बन जाता है।

साहित्य मानव जीवन का प्रतिबिंब होता है। स्पष्ट है कि मानव जीवन जैसा होगा, साहित्य भी वैसा ही होगा। साहित्य में मानव जीवन की इन्हीं स्थितियों को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया जाता है। वास्तव में "साहित्य मनोभावाभिव्यक्ति का प्रस्फुटन है जिससे उसके साथ मनोविज्ञान का चोली-दामन-सा संबंध है।"[14] मनुष्य के असंगत जीवन का अध्ययन करने के लिए तो मनोविज्ञान का पग-पग पर सहारा लेना पड़ता है। डॉ॰नरनारायण राय ने मनोविज्ञान और मनुष्य के असंगत आचरण पर प्रकाश डालते हुए लिखा है- "मनोविज्ञान के बढते हुए विश्लेषण ने व्यक्ति के असामान्य व्यवहारों का अध्ययन कर यह स्पष्ट कर दिया है कि हर व्यक्ति अपने जीवन-व्यवहार में कहीं असामान्य होता है और उसके व्यवहारों एवं आचरणों में संगति नहीं होती।"[15] स्पष्ट है कि असंगति मानव जीवन में सर्वत्र व्याप्त है और मनुष्य के असंगत आचरण के पीछे कोई न कोई मनोवैज्ञानिक कारण अवश्य होता हैं।

**असंगत नाटक से अभिप्राय-**

असंगत नाटक स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य की एक अद्यतन प्रवृत्ति है। असंगत नाटकों की सर्वप्रमुख विशेषता यही है कि उनमें कथानक, पात्रों का चरित्र-चित्रण, घटनाएँ तथा संवाद आदि में कोई परस्पर संगति या सबंध प्रतीत नहीं होता। "असंगत"

या "विसंगत" शब्द इन नाटकों की प्रवृत्तिगत विशेषता के सूचक हैं। आजकल हिन्दी में "असंगत नाटक" संज्ञा प्रचुर मात्रा में प्रचलित है और हमने भी विवेचन-विश्लेषण में "असंगत नाटक" संज्ञा का ही प्रयोग किया है।

असंगत नाटकों में मानव जीवन की असंगतियों पर प्रकाश डाला जाता है। विश्व का हर व्यक्ति अपने जीवन-व्यवहार में असामान्य (Abnormal) होता है तथा उसके व्यवहारों और आचरणों में कहीं न कहीं असंगति पाई जाती है। जीवन की इस असंगति, असम्बद्धता, अस्पष्टता तथा बेतुकेपन को मंचित करना ही असंगत नाटकों का परम उद्देश्य होता है।

असंगत नाटककारों की दृष्टि में आज के व्यक्ति का जीवन निरुद्देश्य है। मनुष्य निरर्थक जी रहा है, निरर्थक मेहनत कर रहा है। उसके जीवन का कोई भी सुनियोजित लक्ष्य नहीं है। मशीनी विकास के कारण उसका जीवन नीरस और एकरस बन गया है। चारों ओर विनाश का आतंक छाया हुआ है। इस आतंक के कारण उसका जीवन अनिश्चित और संकटग्रस्त बन गया है। भय, निराशा, कुंठा, संत्रास, बेतुकापन, अनर्गलता, अनाचारिता तथा चिंता के साम्राज्य में जीना उसकी मजबूरी है। चाहकर भी वह इससे मुक्त नहीं हो सकता। समाज तथा परिवार में रहकर भी वह अकेला है। उसके सामाजिक एवं पारिवारिक संबंध औपचारिक एवं अर्थहीन बन गये है। व्यक्ति जैसा है वैसा वह दिखाता नहीं, बल्कि जैसा वह नहीं है वैसा दिखाने की कोशिश करता है। उसका आंतरिक और बाह्य यथार्थ अलग-अलग है और इन दोनों की टकराहट से ही विसंगतियाँ जन्म ले रही हैं।

असंगत नाटकों के बारे में अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों ने अपने-अपने मत प्रकट किये हैं। "ए हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिटरेचर" ग्रंथ में मुंद्रा द्वय ने असंगत नाटकों की निम्नलिखित विशेषताएँ[16] दी हैं-

1. मानव जीवन अनिवार्यता अर्थहीन है अतः वह घृणास्पद है।
2. मानव के प्रयासों को हमेशा फल प्राप्त होगी ही ऐसी बात नहीं, अतः वह नैराश्यपूर्ण है।
3. वास्तवता तब तक अस्वीकार्य है, जब तक वह स्वप्न और इंद्रजाल से मुक्त नहीं है।
4. मनुष्य मृत्यु के अधीन रहता है, जो हमेशा स्वप्नों और इंद्रजालों को स्नानांतरित करती रहती है।
5. असंगत नाटकों में प्रायः अर्थपूर्ण कार्य-व्यापार और कथावस्तु का अभाव होता है। जो कुछ थोडा-बहुत घटित होता भी है वह अर्थपूर्ण नहीं हो सकता।

6. अंतिम स्थिति असंगत या हास्यास्पद होती है।

7. असंगत नाटक उद्देश्यपूर्ण नहीं होता और समस्या नाटक की भाँति निश्चयबोधक भी नहीं होता। वह गूढ़ चित्रकारी की भाँति होता है, जो निश्चित अर्थबोध दिलाने में असमर्थ माना जाता है।

"दि मिथ ऑफ सिसिफस" में कामू ने संसार की असंगति को समझाने का प्रयास करते हुए लिखा है- "दरअसल मनुष्य और उसके जीवन, अभिनेता और उसके पर्यावरण के बीच का यह अलगाव ही एब्सर्ड भावना का आधार तत्त्व है।[17]

पाश्चात्य असंगत नाटककार यूजीन आयनेस्को ने असंगत नाटक संबंधी विचार प्रकट करते हुए कहा है- "ऐब्सर्ड है उद्देश्यहीनता, अपनी धार्मिक, आधिभौतिकी और अनुभवातीत जड़ों से विछिन्न होकर मनुष्य खो गया है, उसके सारे कर्म निरर्थक, ऐब्सर्ड और निष्प्रयोजन बन गये हैं।"[18]

ऐब्सर्ड कला की सफलता इस तथ्य में है कि उसने समसामयिक यथार्थ को सम्यक् तरीके से प्रतिरूपित किया है। इसी ऐब्सर्डवादी दावे की व्याख्या करते हुए मार्टिन एसलिन लिखता है- "रचनाकार के आंतरिक संसार से असंपृक्त, किसी बाहरी सूचना अथवा समस्या अथवा चरित्रों की नियति उपस्थित करने से ऐब्सर्ड रंगमंच का कतई वास्ता नहीं है, क्योंकि किसी स्थापना की व्याख्या करना अथवा वैचारिक मुद्दों पर बहस आयोजित करना ऐब्सर्ड नाट्य-विधा के कार्यक्षेत्र में नहीं आता है। और न ही घटनाओं को चित्रित करना और नियति को निरूपित करना और चरित्रों की दहला देने वाली घटनाओं को प्रतिरूपित करना ही इसके कार्यक्षेत्र में आता है। दरअसल इसका कार्यक्षेत्र किसी एक व्यक्ति की बुनियादी स्थिति को उपस्थित करना ही है। और चूँकि महज एक अस्तित्त्वबोध को प्रस्तुत करना ही इसका प्रयत्न है, अतएवं आचरण और नैतिकताओं की समस्याओं को वह न जाँच सकेगा और न सुलझा सकेंगा।"[19]

असंगत नाटकों पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी के प्रसिद्ध नाट्य-आलोचक नरनारायण राय ने लिखा है- "व्यावहारिक जीवन में हर व्यक्ति को अपने चरित्र से भिन्न भूमिकाएँ निभानी होती हैं- यही है जीवन की आंतरिक "विसंगति" या "असंगति"। जिस नाट्य रचना में यह असंगति जितनी अधिक उजागर होती है अपने आप में वह ड्रामा उतना ही "एब्सर्ड" हो जाता है।[20]

डॉ॰जयदेव तनेजा ने अपने "हिन्दी रंगकर्मः दशा और दिशा" ग्रंथ में असंगत नाटकों के बारे में लिखा है- "इन नाटकों का कथानक तर्क-तारतम्य युक्त नहीं होता।

संरचना सीधी रेखा में न होकर वृत्ताकार होती है। चरित्रों में भी विकास या बदलाव की कोई संभावना नहीं होती। उपदेशपरक उद्देश्य के बजाय नाटककार जीवन के खोखलेपन, अकेलेपन, ऊब, अलगाव और अर्थहीनता का विसंगत दृश्यांकन भर करता है।[21]"

जीवन को देखने की दो प्रकार की दृष्टियाँ हो सकती हैं- एक सकारात्मक और दूसरी नकारात्मक। असंगत नाटकों में जीवन की नकारात्मक दृष्टि को प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी जाती है। इस पर प्रकाश डालते हुए श्री·बैजनाथ राय लिखते है- "असंगत नाटककार मानते है कि जहाँ आशा है वहीं निराशा भी, जहाँ ज्ञान है वहीं अज्ञान भी, जहाँ सार्थकता है वही निरर्थकता भी। इस प्रकार सारे मानवीय संबंध यदि सारगर्भित और मूल्यवान हैं तो निस्सार और निरर्थक भी। असंगत नाट्य दर्शन इसी नकारात्मक पक्ष को लेकर काव्य-बिंबो के माध्यम से अभिव्यक्ति करता है। यही कारण है कि असंगत नाट्य परम्परा से कटा, नया, अकेला और सर्वथा भिन्न प्रतीत होता है।[22]

असंगत नाटक और जीवन की सारहीनता पर प्रकाश डालते हुए डॉ·प्रेमचंद गोस्वामी ने लिखा है- "एब्सर्ड नाटककार के अनुसार जीवन की सारहीनता इस तथ्य में निहित है कि सामान्यतः हम जहाँ थे, वहीं हैं और रहेंगे। मूलतः हमारे कार्य-व्यापार में कोई परिवर्तन नहीं होता। जीवन का वास्तविक स्वरूप अत्यंत जड़ और व्यर्थ है। अतः इसमें न कुछ होता है और न हो सकता है।[23]

डॉ·किरनचंद्र शर्मा असंगत नाटककारों की दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए लिखते है- "असंगत नाटककार सबसे पहले तर्क और बुद्धि का विरोध करता है और फिर दूसरे स्थान पर आदमी के भीतर आदमी के होने का।···रचनाकार न यहाँ किसी मानवता का दायित्त्व अपने ऊपर ढोता है और न समाज की कोई प्रतिबद्धता उसे व्याकुल करती है, उल्टे दायित्व और प्रतिबद्धता से उसे भय लगता है इसलिए उसकी सारी शक्ति सवालात पैदा करने पर लगी है।"[24]

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य में असंगत नाटक एक सर्वथा नयी दृष्टि को लेकर उपस्थित हुए हैं। असंगत नाटकों में एक नयी विशिष्टता, नवीनता, जीवन को परखने की एक नयी कसौटी, प्रयोगशीलता और विसंवादिता के दर्शन होते हैं। किसी सुनिश्चित-सुनिर्धारित सिद्धान्त या आंदोलन के तहत असंगत नाटकों का निर्माण नही हुआ है, बल्कि जीवन की सारहीनता, ऊब, संत्रास, निराशा, असंगति एवं विडम्बना को प्रतीकों के माध्यम से हास-परिहास की शैली में प्रकट करने के कारण ही इन नाटकों को असंगत नाटक कहा जाता है। असंगत नाटक कथानक

-विहिन होते हैं। उसकी घटनाओं में किसी प्रकार की संगति नहीं होती। इनके चरित्र थके-हारे, ऊबे, निष्क्रिय, विसंगत तथा विक्षिप्त होते हैं। असंगत नाटकों में स्थिति के खोखलेपन और विसंगति को प्रदर्शित करने के लिए असंगत संवादों तथा शब्दों की पुनरावृत्ति का सहारा लिया जाता है। यहाँ केवल समस्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं, उनके समाधान नहीं। अर्थहीनता में अर्थ की तलाश का आग्रह असंगत नाटकों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है। असंगत नाटकों में जीवन की नकारात्मक दृष्टि को प्रयोगात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाता है। मूल्यों के प्रति उपेक्षा का भाव भी सभी असंगत नाटकों में पाया जाता है। संक्षेप में असंगत नाटक परम्परागत नाटकों की तरह कथामय नाटक न होकर अनुभव से स्वतः गुजरने केनाटक हैं।

**असंगत नाटक और परम्परागत नाटक -**

असंगत नाटक स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य की एक अद्यतन प्रवृत्ति है। परम्परागत नाटक और असंगत नाटक कथावस्तु, पात्र और चरित्र-चित्रण, संवाद या कथोपकथन, देश-काल-वातावरण, भाषाशैली, उद्देश्य एवं अभिनेयता सभी दृष्टियों से एक-दूसरें से भिन्न है। परम्परागत नाटक में जहाँ कौशल्यपूर्ण ढंग से सुनियोजित एवं सुनिर्धारित कथा का विकास दिखाकर अंत में कथानक की सारी गुत्थियाँ सुलझ जाती है, वहाँ असंगत नाटक में कथावस्तु के सूत्र अत्यंत क्षीण होते हैं, जिसका न आरंभ होता है, न अंत। परम्परागत नाटक में घटनाओं में संगति होती है, इसके विपरीत असंगत नाटक की घटनाओं में बिखराव होता है। परम्परागत नाटक में पात्रों के चरित्र सुनिश्चित ढंग से विकसित होते हैं, जबकि असंगत नाटक के चरित्र चेहरे-मोहरों से मनुष्य से मिलते-जुलते हैं, लेकिन कार्य-व्यापार और भाषा की दृष्टि से मनुष्येतर प्राणी जैसे दिखाई पडते हैं। परम्परागत नाटकों में जहाँ पात्रों के कार्य-व्यापार में एक कार्य-कारण संबंध दिखाई देता है, वहाँ असंगत नाटक कार्य-करण के सिलसिले

असंगत नाटक के चरित्र चेहरे-मोहरों से मनुष्य से मिलते-जुलते हैं, लेकिन कार्य-व्यापार और भाषा की दृष्टि से मनुष्येतर प्राणी जैसे दिखाई पडते हैं। परम्परागत नाटकों में जहाँ पात्रों के क्रिया-व्यापार में एक कार्य-कारण संबंध दिखाई देता है,वहाँ असंगत नाटक कार्य-करण के सिलसिले से एकदम अछूते होते हैं।वहाँ पात्रों का कार्य-व्यापार यांत्रिक,तर्कहीन और वस्तुपरक प्रमाणिकता के उल्टे दिखाया जाता है।

परम्परागत नाटक के संवाद अर्थपूर्ण,पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहायक एवं कथावस्तु के विकास में योग देने वाले होते हैं;इसके विपरीत असंगत नाटक के संवाद निरर्थक , उलझे हुए एवं महज समय काटने के लिए होते हैं। परम्परागत नाटक में जहाँ नाटककार देश-काल वातावरण

का ध्यान रखता है, वहाँ असंगत नाटक में इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं दिया जाता। परम्परागत नाटक की तरह असंगत नाटक में स्थल,काल,और कार्य की एकता नहीं पाई जाती। भाषाशैली की दृष्टि से भी परम्परागत नाटक और असंगत नाटक में अंतर है। जीवन और जगत् को संगतिहीन मानने के कारण असंगत नाटककार भाषा और शब्दों को भी अर्थहीन और सम्प्रेषण की दृष्टि से अक्षम मानते हैं। अतः जीवन और जगत् की विसगति और खोखलेपन को उजागर करने के लिए ये नाटककार असंगत संवाद, शब्दों की पुनरावृत्ति और कभी-कभी मौन का भी प्रयोग करते हैं। परम्परागत नाटक की तरह असंगत नाटक का उद्देश्य उपदेशपरक न होकर जीवन के खोखलेपन,अकेलेपन,ऊब,अर्थहीनता,निष्क्रियता और विसंगति को उजागर करना होता है।

परम्परागत नाटक की तरह असंगत नाटक में वेशभूषा की चमक-दमक नहीं होती। जीवन की मूलभूत असंगतियों को व्यंजित करने के लिए यहाँ सांकेतिक प्रणाली को अपनाया जाता है। असंगत नाटकों ने आदमी को देखने-परखने का स्त्रोत ही बदल दिया है। इससे "सक्रिय की जगह निष्क्रिय ने ली। सार्थक की जगह निरर्थक ने, इतिहास की तात्कालिकता ने या समसामयिकता ने, पात्रों की विपात्रों ने या अपात्रों ने,घटना की अघटना या घटनाहीनता ने मूल्यों की मूल्यहीनता ने, नायक की अनायक ने, समस्याओं की समस्याहीनता ने और चमत्कार की ऊब ने, व्यंग्य की विद्रूप ने।[25]

सुप्रसिद्ध नाट्य समीक्षक मार्टिन एस्टिन के अनुसार- "एब्सर्ड एवं परम्परित नाटक के मुहावरे में मूलभूत अंतर यह है कि जहाँ परम्परित नाटक बाह्य विश्व का वस्तुनिष्ठ चित्रण करने का प्रयत्न करता था, वहीं एब्सर्ड नाटक मनोदशाओं के रूपकों को मंच पर पेश करने की कोशिश करता है। अतएव परम्परित नाटक कथा कहता है, एब्सर्ड नाटक रूपकों अथवा बिम्बों का एक पैटर्न विकसित करता है।[26]इस प्रकार परम्परागत नाटक में जिन रंग-मूल्यों, रंग-प्रतिमानों और रंग-व्यवहारों का प्रयोग होता है, असंगत नाट्य विधा इन सबको नकारती है।

<u>पाश्चात्य एब्सर्ड नाट्य परम्परा -</u>

पाश्चात्य नाटककारों ने पिछले सौ वर्षों में नाटक के क्षेत्र में अच्छी पहल की है। इस काल में नाटक में कथ्य और शिल्प, दोनों स्तर पर क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। पश्चिम में इब्सन (1828-1906 ई॰) और स्ट्रिंडबर्ग (1849-1912 ई॰) से ही परम्परागत रूढ़ियाँ टूटने लगी थीं और नाटक नया शिल्प ग्रहण करने लगा था। इब्सन और स्ट्रिंडबर्ग के बाद आलफ्रेड जेरी, अपोलनेयर, आस्कर कोकोशका, ट्रिस्टन जारा आदि ने नाटक को और आगे बढ़ाया। अन्तर्वृत्तियों का गहराई से विश्लेषण कर ये नाटककार अतियथार्थवाद की

ओर भी अग्रेसर हुए।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद नाटक में बडी तेजी से परिवर्तन आया, और विकृत मनोवृत्तियों का चित्रण अधिक होने लगा। इस दिशा में पश्चिम के रिबमांदिनेज, इवान गाल, एफ.स्काट फिलजेराल्ड, बरटोल्ड तथा ब्रेख्त आदि ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनके नाटकों में निरर्थक या अर्थहीन संवाद, क्रूरता, विदूषकी आदा और बीभत्स कल्पना के प्रयोग अधिक हुए हैं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद सैमुएल बेकेट, यूजीन आयनेस्को, ज्यां जेने, आर्थर आदामोव, एडवर्ड आलबी, हैरोल्ड पिंटर आदि ने अनेक असंगत नाटक लिखें और इन्हें अच्छी ख्याति भी मिली। सैमुएल बेकेट के नाटक "वेटिंग फॉर गोदो" (1952 ई.) को तो नोबेल पुरस्कार भी मिला। इससे इस वर्ग के विवादास्पद नाटकों को जैसे सामाजिक स्वीकृति और मान्यता ही मिल गई। बेकेट ने "वेटिंग फॉर गोदो" और "एडगेम" के द्वारा एब्सर्ड नाटक और रंगमंच को विश्वव्यापी पैमाने पर विकसित किया। हिन्दी नाटक और रंगमंच को भी इस मौलिक धारा से जोड़ने वाला बेकेट और उसका "वेटिंग फॉर गोदो" ही है।

इस युग के नाटक अपने परिवेश की उपज हैं। इनमें निरर्थकता, संत्रास और जीवन का बेतुकापन अभिव्यक्त हुआ है। जीवन की निस्सारता, ऊब, निराशा, असंगति तथा विडम्बना को हास-परिहास या करूणा-दार्शनिकता के माध्यम से विसंगत भाषाशैली में अभिव्यक्त करने के कारण ही इन नाटककारों को एब्सर्ड नाटककार कहा जाने लगा। पश्चिम की कठोर यथार्थवादी दृष्टि ने वहाँ जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टि को मुख्य बना दिया है। जीवन-मरण कुछ भी अपने हाथ में न होने के कारण पश्चिम में जीवन को एक विवशता माना जाता है। उस पर "द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद व्यक्ति अत्यधिक संत्रस्त हो उठा, और उसके अस्तित्त्व का संकट उभरकर सामने आया। उसमें घोर निराशा, टूटन, अनास्था और जीवन की निस्सारता व्याप्त हो गयी। विश्वयुद्ध ने मनुष्य के जीवन को नकार दिया, और इसी से विशुद्ध असंगत नाटकों का निर्माण हुआ।[27]

पाश्चात्य साहित्य में 1945 से 1965 तक का काल असंगत नाटकों की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस काल में वहाँ असंगत नाटकों की पर्याप्त चर्चा रही, और अनेक असंगत नाटक लिखे गये। पाश्चात्य साहित्य के असंगत नाटकों में उल्लेखनीय नाटक हैं- **बेकेट** के "वेटिंग फॉर गोदो", "एडगेम", "एम्बर्स", "फिल्म", "कम एण्ड गो", "एह जो", आदि। **आयनेस्को** के "दि चेयर्स", "विक्टिम्स ऑफ डयूटी", "अमेदे ऑर हाउ टू गेट रिड ऑफ इट", "दि मेड टू मेरी", "राइनोसिरोज", आदि। ज्यां जेने के "डेथ

वाच", "दि मेड्स", "दि ब्लैक्स", "दि स्क्रीन्स", आदि; आदामोव के "दि इनभिजवेल", आलबी के "दि जू स्टोरी", "हू इज अफ्रेड ऑफ वर्जीनिया वुल्फ", आदि; पिंटर के "दि डम्ब वेटर", "दि बर्थ डे पार्टी","दि केयर टेकर", आदि। इन नाटकों में समकालीन समस्याओं की अभिव्यक्ति असंगत शैली में हुई है।

**हिन्दी के असंगत नाटक : पाश्चात्य प्रभाव -**

हिंदी में जो असंगत नाटक लिखे गये हैं, उन पर पाश्चात्य प्रभाव अधिक है। वैसे पूरब और पश्चिम - सभी जगह जीवन की असंगतियाँ और विशेषताएँ मोजूद होती है। तथापि पूरब और पश्चिम की जीवन दृष्टियाँ भिन्न-भिन्न होने के कारण पश्चिम में ही असंगत नाट्य-शिल्प का विकास अधिक हुआ। यह सही है कि विश्वयुद्धों में पश्चिम ही अधिक जला-भुना, पर यह भी सही है कि भारत को भी महाभारत काल से लेकर आज तक कई आक्रमणों का सामना करना पडा है। फिर भी भारत में असंगत नाट्य-आंदोलन परम्परा बन विकसित नहीं हुआ। इसका मुख्य कारण है भारत की सांस्कृतिक-सामाजिक दृष्टि। पश्चिम की तरह भारत जीवन को विवशता नहीं, ईश्वरीय वरदान मानता है। इसी प्रकार पश्चिम का जीवन के प्रति देखने का दृष्टिकोण नकारात्मक है, तो भारत में जीवन की तरफ सकारात्मक दृष्टि से देखा जाता है। भारत में जीवन का प्रवृत्तिमूलक और आदर्शमूलक रूप ही स्वीकृत किया गया है। इन्हीं कारणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि हिन्दी का असंगत नाट्य पश्चिम के अनुकरण का परिणाम है। वैसे पश्चिम में असंगत नाट्य आंदोलन आरंभ होने से पहले भारत में "भुवनेश्वर" ने कई असंगत नाटक लिखे थे, पर यहाँ की सांस्कृतिक दृष्टि भिन्न होने के कारण वे परम्परा के साथ यहाँ विकसित न हो सके।

हिन्दी के असंगत नाटकों पर पाश्चात्य प्रभाव की चर्चा करते हुए डॉ॰गोविंद चातक ने लिखा है- "एब्सर्ड के प्रभाव में आकर हिन्दी नाटक में भद्दी, बेतुकी, भोंडी और अनर्गल स्थितियों का संयोजन एक सामान्य प्रवृत्ति बनी। मानव जीवन की विसंगतियों का दर्शन कराने के लिए नाटककार ने अति कल्पना, अतिरंजनापूर्ण कथावस्तु, सनसनीखेज दृश्य योजना और विक्षोभ की भावना से परिपूर्ण विचित्र, हास्यास्पद किंतु कारुणिक चरित्रों का आश्रय लिया। इसके साथ उन्होंने विकृति, फेण्टेसी और फार्स का प्रयोग कर अद्भुत प्रभाव पैदा करने की कोशिश की।"[28]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटय साहित्य में लिखे गये अधिकांश नाटक पाश्चात्य ऐब्सर्ड नाट्य-परम्परा से प्रभावित है। लेकिन

इन नाटकों में चित्रित समस्याएँ और परिवेश मूलतः भारतीय है और ये नाटक भारतीय जन जीवन की असंगतियों को ही व्यक्त करते हैं।

**असंगत नाटक : भारतीय परिप्रेक्ष्य में -**

यद्यपि असंगत नाट्य मूलतः भारतीय जीवन-दृष्टि नहीं, फिर भी सामयिक प्रभाव के रूप में साठोत्तरी हिन्दी नाट्य-साहित्य में अनेक असंगत नाटक लिखे गये हैं। इसका एक कारण यह भी रहा है कि पश्चिम और पूरब की जीवन-दृष्टियाँ चाहे जितनी भिन्न रही हो, अनुभूति के धरातल पर मानव-मानव में समानता होती ही हैं। इसीलिए पश्चिम की तरह जीवन की विसंगतियाँ और विकृतियाँ यहाँ भी दिखाई देती है। यह सही है कि "वर्तमान युग के नाटकों पर हमें एब्सर्ड नाट्यधारा का ही सर्वाधिक प्रभाव दिखाई देता है, किंतु यह पाश्चात्य शिल्प आरोपित न होकर स्वाभाविक रूप में आया है, क्योंकि हमारे देश की परिस्थितियाँ भी इस शिल्प के अनुकूल विसंगत परिवेश निर्मित कर रही हैं।"[29]

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत में राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित हुए। इन परिवर्तनों ने भारत के मनुष्य को आदर्श और कल्पना के स्वप्निल संसार से हटाकर यथार्थ के कठोर धरातल पर ला खड़ा किया। स्वतंत्रतापूर्व देखे गये स्वप्न स्वतंत्रता के बाद धूल में मिल गये। वर्तमान राजनीति का क्षेत्र पूर्ण रूप से भ्रष्ट एवं विषेला बन गया है। सत्तान्ध शासक अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए मूल्यहीन और नीतिभ्रष्ट आचरण अपना रहे हैं। स्वार्थ-सिद्धि में व्यस्त इन शासकों को देश के हित-अहित की भी चिंता नहीं है। राजनीति के इस विसंगत और विषैले वातावरण में सामान्य मनुष्य का दम घुट रहा है। सब कुछ देखकर और जानकर भी चुप रहने के लिए वह विवश है। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए एक बेज़ान लाश बनकर वह जी रहा है।

सामाजिक क्षेत्र में भी व्यक्ति को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। महँगाई, बेरोजगारी, आर्थिक वैषम्य, स्त्री-पुरुष के बदलते सम्बन्ध, मानवीय संबंधों की हास्यास्पद स्थिति, युवा पीढ़ी की दिशा-भ्रांत स्थिति, यांत्रिक जिन्दगी के अभिशाप, नई शिक्षा प्रणाली, महानगरों की संवेदनाहीन मशीनी जिन्दगी आदि के कारण हताश, शोषित और दिशाभ्रान्त लोग एकाकीपन, मानसिक तनाव, कुंठा, ऊब, निराशा और संत्रास का शिकार बनने के लिए अभिशप्त हैं।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय जन-जीवन की परिस्थितियाँ भी असंगत नाटकों के अनुकूल थीं। जिस प्रकार पारंपरिक जीवन और उसकी संगति अब तक नाट्य वस्तु बनी रही, उसी प्रकार जीवन का एक अविभाज्य हिस्सा होने

के कारण असंगति भी नाट्य का विषय बन गई। और इन असंगत नाटकों में जीवन की आंतरिक विसंगतियाँ अलग-अलग रूपों में अभिव्यक्त हुई है। क्योंकि जीवनानुभूतियाँ ही नाटक के माध्यम से मूर्त अभिव्यक्ति पाती रहती हैं।

असंगत नाटक : सैद्धांतिक विवेचन -

कथ्य -

असंगत नाटक में कथानक का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। अपने नाम की तरह इन नाटकों में कथानक की कोई संगति नहीं होती। अधिकतर असंगत नाटकों में परम्परागत अर्थ में कोई कथानक होता ही नहीं, और होता भी है तो बहुत सूक्ष्म। ये नाटककार जन्म और मृत्यु के बीच के कालखंड को अंकहीन और अनिश्चित मानते हैं। इस कारण परम्परागत नाटकों की तरह अधिकांश असंगत नाटकों में तीन अंको का विभाजन नहीं होता। जीवन कभी भी शुरू हो सकता है और कभी भी समाप्त, इसलिए असंगत नाटकों के कथानक में कार्यावस्थाओं का भी महत्त्व नहीं होता। इन नाटककारों के अनुसार जिस तरह जीवन को विभिन्न खण्डो में नहीं बाँटा जा सकता, उसी प्रकार कथानक को भी प्रारम्भ, विकास, चरमसीमा, उतार, और अन्त की स्थिति में विकसित करना ठीक नहीं है। कथानक जहाँ से आरम्भ होता है, वही समाप्त होता है। इस प्रकार के नाटकों के कथानक में किसी प्रकार की क्रमबद्धता नहीं पायी जाती, बल्कि कथानक की घटनाओं में बिखराव ही इन नाटकों की विशेषता है। इन नाटकों में केवल समस्याएँ प्रस्तुत की जाती हैं, उनका समाधान नहीं दिया जाता। बल्कि समाधान की ये नाटककार खिल्ली उड़ाते हैं। इन नाटकों में केवल व्यक्ति की वास्तविक स्थिति दर्शकों के सामने प्रकट की जाती है। कभी-कभी इन नाटकों में पशु प्रतीकों के माध्यम से आज के मनुष्य की हिंसक, नीच, क्रूर, और बर्बर प्रवृत्तियों का पर्दाफाश भी किया जाता है।

असंगत नाटकों के कथ्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ॰चंद्र लिखते हैं- "असंगत नाटक व्यक्ति के भीतरी यथार्थ को अधिक व्यक्त करते हैं। इनमें परम्परागत मूल्यों के प्रति आस्था नहीं है। जीवन की विद्रूपता और विकृतियों को ये अपना आधार बनाते हैं। इनमें बेहूदे और अनर्गल कार्यों का चित्रण अधिक रहता है। काम के विकृत रूपों की अभिव्यक्ति अतिरंजना के साथ की जाती है। असंगत नाटक प्रतीकों के माध्यम से जीवन की विसंगतियों और विडम्बनाओं को चित्रित करते हैं। भय, चिंता, निराशा और संत्रास को इनमें अधिक महत्त्व दिया जाता है। इनके वर्णन हास्यप्रधान और अतिशयोक्तिपूर्ण होते हैं। ये नाटक अधिक विद्राह में न जाकर, व्यक्ति की निस्सहाय, निरुद्देश्य और अर्थहीन स्थिति को चित्रित

करते हैं। इनमें क्रूरता और बीभत्सता अधिक रहती है। ऊपर से ये हल्की किस्म के दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि इनमें व्यंग्य से परिहास को अधिक महत्त्व दिया जाता है; पर इनका अन्तःपक्ष बड़ा गहरा होता है। इनका हास्य करुणा-केंद्रित होता है। ये अस्तित्व की पीड़ा को हँसकर भुला देना चाहते हैं।"[30]

असंगत नाटक मानवीय जीवन की असंगतियों को उनकी पूरी भयानकता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। जीवन के असंगत, भोंडे और अर्थहीन आयामों को वाणी देते हैं। मानव की दुःखद और असहाय स्थिति का रेखांकन करते हैं। आदर्श और नैतिकता से वे कोसों दूर रहते हैं। स्त्री-पुरुष के नितान्त वैयक्तिक संबंध भी यहाँ खुलकर अभिव्यक्ति पाते हैं। ये मनुष्य को बताते हैं कि जीवन समतल भूमि नहीं, बल्कि ऊबड़-खाबड़ धरती है। आज का अभिशप्त और अंदर ही अंदर टूटा हुआ इन्सान ही इन नाटकों के केंद्र में है। इन नाटकों में कथावस्तु कम और नाटककार की बौद्धिक प्रतिभा का प्रदर्शन अधिक रहता है। कथावस्तु के नाम पर इनमें बेतुकापन, अनर्गलता और अनाचारिता का चित्रण ही अधिक होता है।

असंगत नाटकों के कथ्य पर प्रकाश डालते हुए डॉ॰गोविंद चातक ने लिखा है- "वस्तुतः विसंगतिवादी नाटक स्थितियों का नाटक है, घटनाओं या चरित्रों का नहीं। उसका लक्ष्य कथा कहना नहीं, काव्यात्मक बिम्ब प्रस्तुत करना है। विसंगतिवादी नाटककार मानवीय स्थिति की सही विद्रूपता का दर्शन कराने के लिए प्रायः बिम्बों, दुःस्वप्नों और अतिकल्पनाओं को माध्यम बनाते हैं और अतिरंजनापूर्ण कथावस्तु, विलक्षण चरित्रों और सनसनीखेज दृश्य-योजना का अटपटा प्रयोग कर पाठक/प्रेक्षक को झटका देते है।...कुल मिलाकर इन नाटकों में व्यंग्य और कारूण्य के रसात्मक तत्त्वों का समावेश मिलता है जो भय और त्रास का अनुभव देते हैं।"[31] तात्पर्य जीवन की विभिन्न असंगतियों के माध्यम से मानव नियति की त्रासदी उभारना ही इन नाटकों का कथ्य है।

<u>चरित्र-सृष्टि</u> -

असंगत नाटकों में परम्परागत नाटकों की तरह न तो नायक, नायिका और खलनायक होते हैं और न ही चरित्रों का कोई सुनियोजित विकास। "एब्सर्ड नाटककारों की तरह उनके मुख्य पात्र भी अतिनाटकीय और अतिभावुक होते हैं। अधिकतर तो वे अनायक होते है।"[32] इन नाटकों में पात्र, पात्र न रहकर प्रतीक बन जाते हैं। इसी से उन्हें नाम की भी आवश्यकता नहीं रहती। "आदमी", "औरत", "लड़का", "लड़की" या "अ","ब","क", कुछ भी हो सकते हैं। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं की जगह जातिवाचक संज्ञाओं का प्रयोग इन

नाटकों की अपनी विशेषता है। इन नाटकों के चरित्र अधिकतर आवारा, उचक्के, बेघर तथा समाज से बहिष्कृत होते हैं। वे प्रायः असामान्य (Abnormal) होते हैं।

असंगत नाटकों के पात्र जीवन से पूरी तरह हताश और निराश होते हैं। जीवन-मूल्यों तथा आदर्शो पर इनका विश्वास नहीं होता। इन नाटकों में अधिकतर बीमार, बदशक्ल, भोंडे, दुश्चरित्र, आलसी, निकम्मे, बेतुके, चोर, उचक्के, आवारा, अपराधी, खंडित, विघटित, कुंठित, दंडित, बहिष्कृत, विक्षिप्त, ऊबे, थके-हारे, लम्पट लालची एवं निरर्थक जीवन जीने वाले पात्रों को विशेष स्थान दिया जाता है। इनमें विक्षोभ की भावनाएँ अधिक होती हैं। उनका जीवन जीने का ढंग हास्यास्पद होता है। आत्म-प्रशंसा या आत्म-निंदा में ये आनंद का अनुभव करते हैं। पाप-पुण्य का इनकी नजर मे कोई महत्त्व नहीं होता। दरिद्रता, अभाव और परेशानियों के कारण ये पात्र अपना संतुलन खो बैठते हैं। इनके जीवन का कोई महत्त्वपूर्ण उद्देश्य नहीं होता, निरर्थक प्रयत्न करना ही इनका जीवन होता है। इनका प्रेम भी पाशविक होता है। अपने सुख के लिए औरों को पीड़ा देना ये बुरा नहीं मानते, बल्कि औरों की पीड़ा देखकर भी ये आनन्द का अनुभव करते हैं।

इनके कार्य विदूषकी ढंग के, तर्कहीन और निरर्थक होते हैं। इनमें बेहुदे और अनर्गल कार्यों का चित्रण अधिक रहता है। ये पात्र केवल अपनी बात कहते हैं। अन्य पात्रों के साथ होना तो उनकी मजबूरी है। जिस तरह जीवन अपने आप में संगतिहीन और अर्थहीन है उसी तरह असंगत नाटकों के पात्र और उनके कार्य भी टेढ़े, आश्चर्योत्पादक, बेतुके, अकारण, तर्कातीत, भोंडे, और अर्थहीन होते हैं।

असंगत नाटकों के पात्र और उनके क्रिया-कलापों की चर्चा करते हुए डॉ॰अज्ञात ने लिखा है- "इसमें ऐसे पात्रों का प्राधान्य है, जो आत्म-पीड़ित नियति के दारूण व्यंग्य से परितप्त तथा जीवन के परस्पर विरोधी मूल्यों के बीच दिग्भ्रमित रहते हैं। ये पात्र दिन-प्रतिदिन के व्यवहार के पारम्परिक वार्तालाप को असंगत एवं अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं कि वह उपहासास्पद लगे, किंतु उससे जीवन के किसी नग्न सत्य का उद्घाटन हो।"[33] तात्पर्य यह कि असंगत नाटकों के पात्र ऊलजलूल होते हुए भी जीवन के नग्न यथार्थ को उद्घाटित करने में समर्थ होते हैं।

**भाषिक और संवादीय संरचना -**

असंगत नाटककार जीवन और जगत् को असंगत और अर्थहीन मानते हैं। परिणामस्वरूप संवाद और भाषा को भी ये सम्प्रेषण की दृष्टि से अक्षम मानते हैं। पारम्परिक भाषा इनकी दृष्टि में अर्थहीन बन गई है। सभी असंगत नाटककार भाषा पर, उसके प्रचलित रूप पर

अविश्वास करते हैं। वे यह मानते है कि भाषा की पारम्परिक शक्ति चुक गई है। परम्परागत उपलब्ध घिसी-पिटी भाषा के बने-बनाये ढाँचे को तोड़कर उसे नये अर्थ से सम्पृक्त करने के लिए एक लचीले साधन के रूप में उन्होंने भाषा को ग्रहण कर अद्भुत प्रभाव की सृष्टि की है।

असंगत नाटककारों ने भाषा और संवाद की दिशा में क्रांतिकारी परिवर्तन किया है। इन्होंने अपनी भाषा को "हरकत की भाषा" कहा है, जिसमें शब्द कम और हरकत अधिक होती है। इसमें शब्द के साथ पूरे शरीर को झोंकना होता है। इनकी भाषा रोजमर्रा की - दैनंदिन बोलचाल की भाषा होती है। इनकी दृष्टि में परम्परागत भाषा हमारी असलियत को-वास्तविकता को छिपाती है। हमारे भीतर का यथार्थ प्रकट करने के लिए यह भाषा असमर्थ है। क्योंकि परम्परागत भाषा निरर्थक हो गई है- शब्द खोखले एवं अर्थशून्य बन चुके हैं। इसीलिए इन्होंने परम्परागत भाषा को त्यागकर प्रतीकात्मक, सांकेतिक और हरकत की भाषा को अपनाया। कमलेश्वर के शब्दों में - "इन नाटकों में भाषा का इस्तेमाल नहीं, शब्द के नाद और स्वरों का इस्तेमाल है, जो दर्शक को परम्परागत संज्ञा से शून्य करने का काम करती है।"[34]

जीवन की विसंगतियाँ और विद्रूपताएँ प्रदर्शित करने के लिए इन नाटककारों ने असंगत संवादों का प्रयोग किया है। इन संवादों में अनकहे अर्थ को उजागर करने की असाधारण शक्ति है। कभी-कभी अपने नाटकों में इन नाटककारों ने मौन का भी सार्थक प्रयोग किया है। क्योंकि खामोशी को ये सबसे जीवंत यथार्थ मानते हैं। कभी-कभी जीवन के खोखलेपन और विसंगति की अभिव्यक्ति के लिए इन्होंने शब्दों की पुनरावृत्ति का भी प्रयोग किया है। मनुष्य के जीवन की विकृति, विसंगति, विद्रूपता, आंतरिक रिक्तता तथा संबंधों की टूटन प्रदर्शित करने के लिए इन्होंने अपने नाटकों में यांत्रिक, विश्रृंखल, निरर्थक, बेतुके, अस्पष्ट, अप्रासंगिक, अतिरंजित, असम्बद्ध, अटपटे, खंडित, विकृत, हास्यास्पद, विरोधाभास से युक्त एवं ऊलजलूल संवादों का प्रयोग किया है।

डॉ॰ किरनचंद्र शर्मा के अनुसार "एब्सर्ड नाटक के वार्तालाप के विषय में कहा जाता है, 'His characters talk but say nothing' और यही "टॉक बट से नथिंग" इन नाटकों का सम्पूर्ण बाहरी विधान निर्मित करती है। यानी कि नाटक के भीतरी "भय" को पात्रों को बड़बड़ाना जिस प्रक्रिया के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है वही असंगत नाट्य है। इसमें पात्र भाषा में संवाद तो करते हैं पर उनके शब्द उनकी भाषा नहीं होते, उनकी ध्वनियाँ तथा उनके सम्पूर्ण हावभाव ही उनकी भाषा होते हैं।"[35] अर्थात पात्रों के क्रिया-कलाप ही उनके भावों को अभिव्यक्त करते हैं।

**प्रतीक और बिम्ब विधान -**

जहाँ नाटककार अपनी बात की गहरी व्यंजकता को प्रभावशाली और मार्मिक ढंग से साधारण रीति द्वारा अभिव्यक्त नहीं कर पाता वहाँ वह प्रतीक का अवलंबन ग्रहण करता है।"[36]कथाविहीनता, पात्रों की अर्थहीन और अज़ीबोग़रीब हरकतें, निरर्थक वार्तालाप, बेढंगी परिस्थितियों, हरकत की भाषा और अपरिचित पात्रों के ऊलजलूल संसार को नाटक में निभा ले जाने के लिए असंगत नाटककार अपने नाटकों में प्रतीक और बिम्ब विधान का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। वातावरण की अद्भुत सृष्टि करने के लिए प्रतीक और बिम्बों का प्रयोग अत्यंत सार्थक सिद्ध हुआ है।

आज के युग में मनोविज्ञान को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व दिया जाता है। असंगत नाटककार भी अपने नाटकों में मनोविज्ञान के आधार पर पात्रों के अवचेतन को व्यक्त करने के लिए काव्यात्मक बिम्बों का प्रयोग करते हैं। विरूप दृश्यों, जीवन की विद्रूपताएँ और मनोवैज्ञानिक यथार्थ को उद्घाटित करने का काम इन्होंने प्रतीकों और बिम्बों द्वारा किया है। दर्शकों को आकृष्ट करने के लिए नाटकीय वातावरण की सृष्टि करना और विचारों को प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्त करना असंगत नाटकों की अपनी विशेषता है। मनोदशाओं के रूपकों को मंच पर अभिव्यक्त करने के लिए असंगत नाटककार रूपकों और बिम्बों का पैटर्न विकसित कर अपने दर्शकों पर प्रभाव डालने की कोशिश करते है। आज के मानव की हिंसक, नीच, क्रूर, बर्बर और पाशविक प्रवृत्तियों के उद्घाटन के लिए इन नाटककारों ने पशु-प्रतीकों का भी उपयोग किया है।

सार्थक दृश्यों अथवा शब्द समुच्चयों द्वारा जीवन की असंगति और निस्सारता को प्रस्तुत करने में असंगत नाटककारों का विश्वास नहीं है। नाटककार के विचारों को प्रतीकात्मक ढंग से सांकेतिक प्रणाली में अभिव्यक्त करने में ही इन नाटकों का "एक्शन" है। पात्रों के मनोभाव और संवेदनाओं को व्यक्त करने के लिए असंगत नाटककारों ने परम्परित पोशाकों से अलग प्रतीकात्मक पोशाकों का प्रयोग किया। कभी-कभी घास-फूस या अखबार लपेट कर या टाट के कपड़े परिधान करके इनके पात्र मंच पर उपस्थित होते हैं। कभी-कभी मुखौटों का प्रयोग भी किया गया है। इसके साथ ही विकृति, फैण्टसी, फार्स तथा स्वप्न-दृश्यों का प्रयोग भी यत्र-तत्र दिखाई देता है। पर कभी-कभी इनके प्रतीक और बिम्ब इतने दुरूह बन गये है कि ये नाटक बौद्धिक वर्ग तक ही सीमित रहते हैं। शिल्प की दुरुहता और जटिलता के कारण इनकी प्रतीकात्मकता जनसामान्य से जुड़ नहीं पाती। इसी कारण इन नाटकों का विशेष प्रचार-प्रसार नहीं हो सका।

रंगमंचीय आयाम -

नाटक दृश्य-श्राव्य विधा होने के कारण साहित्य की सबसे रमणीय विधा मानी जाती है। नाटक अपने बुनियादी स्तर पर दर्शकों के लिए ही लिखा जाता है। इसलिए नाटक, दर्शक और रंगमंच अनिवार्यतः एक-दूसरे से सम्बद्ध हो जाते हैं। डॉ·लाल के शब्दों में- "रंगमंच कई रंगकर्मियों का सामूहिक अधिष्ठान है। रंगक्षेत्र का सारा कार्य एक सामाजिक कार्य है, दूसरी ओर सामूहिक, तिसरी ओर यह शिल्प-प्रधान है। इसमें तमाम तकनीकी दक्षताओं का पूरा-पूरा सहयोग है।"[37] पारम्परिक नाटक और असंगत नाटक मूलतः भिन्न-भिन्न होने के कारण असंगत नाटकों का रंगमंच भी सामान्य रंगमंच से अलग किस्म का होता है।

असंगत नाटककार परम्परागत मंच-सज्जा की औपचारिकताओं में विश्वास नहीं करते। रंगसज्जा की सुघड़ता और वेशभूषा की चमक-दमक को इन नाटककारों ने बहिष्कृत किया। जीवन की मूलभूत असंगतियों की अभिव्यक्ति के लिए इन्होंने सांकेतिक प्रणाली को अपनाया। इनकी मंच-सज्जा साधारण एवं असम्बद्ध होती है। इनका मंच प्रतीकात्मक, ऊलजलूल तथा अल्पव्यय वाला होता है। असंगत नाटककार दर्शकों और पात्रों के बीच विशेष दूरी नहीं रखता। अनकहे अर्थ को उजागर करने में इस रंगमंच ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

आयनेस्को आदि सभी असंगत नाटककार अभिनेता और रंगमंच को बनावट के बंधनों से मुक्त करने और अभिनेता की कल्पना-शक्ति की स्वतंत्रता को बाँध लेने में विश्वास करते हैं। एब्सर्ड रंगमंच की मुख्य शक्ति दर्शकों को सतर्क-सजग रखने की है। इनकी वेशभूषा भी साधारण ही होती है। घास-फूस, अखबार या टाट लपेट कर भी इनके पात्र रंगमंच पर अवतीर्ण होते हैं। प्रतीकात्मक ढंग और सांकेतिक अभिव्यक्ति इस मंच की विशिष्टता है।

ये नाटककार मूक अभिनय को अधिक महत्त्व देते हैं। असंगत रंगमंच अर्थहीनता में भी अर्थ की तलाश का आग्रह करता है। रंगमंच की प्रत्येक वस्तु किसी न किसी अर्थ से जुड़ी होती हैं। प्रायः एक ही दृश्यबंध पर समस्त नाटक अभिनीत होता है। दृश्य-परिवर्तन के अंतराल या पर्दों की भरमार यहाँ नहीं होती। असंगत नाटककार रंगमंच पर भी विसंगति का आधार लेकर चलते हैं। रंगमंच पर इनके पात्र सक्रिय रहते हैं। प्रेक्षकों के आगे हमेशा कुछ न कुछ घटित होता रहता है। इन पात्रों की क्रियाएँ अर्थहीन, बेतुकी, भोंडी तथा विदूषकीय एवं हास्यास्पद होती है। इन नाटकों का कथ्य अत्यंत सूक्ष्म होने

के कारण इनमे ध्वनि-प्रकाश योजना का भी प्रतीकात्मक प्रयोग किया जाता है।

डॉ॰रामसेवक सिंह ने पात्रों के क्रिया-कलापों की चर्चा करते हुए लिखा है- "ड्रामा शब्द का अर्थ मूल ग्रीक भाषा में "मैं कुछ करता हूँ" होता है, इसीलिए ऐब्सर्ड नाट्यकार हमेशा अपने चरित्रों को सक्रिय रखते हैं। परिणाम यह होता है कि दर्शकों की आँखों के समक्ष कुछ न कुछ घटित होता रहता है। ये नाटककार भय, चिंता और त्रास जैसे अनुभवों को भी रंगमंच पर उपस्थित करने का प्रयत्न करते हैं।"[38] डॉ॰गोविंद चातक के अनुसार- "हावभावों, वाग्व्यवहारों और शारीरिक चेष्टाओं का भाषिक अभिव्यक्ति के साथ घनिष्ठ संबंध होता है।··वस्तुतः मंच के लिए ऐसी भाषा अपेक्षित है जो हरकत, क्रिया-व्यापार, गति, हाव-भाव, चेष्टा आदि भाषेतर माध्यमों से जुडी हो।"[39] तात्पर्य यह कि हिन्दी असंगत नाटककारों ने रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में भी क्रांतिकारी परिवर्तन करने की कोशिश की है।

उद्देश्य -

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्याप्त असंगतियों को उनके नग्न यथार्थ के रूप में चित्रित करना और जीवन के खोखलेपन, बेतुकेपन और अस्पष्टता को व्यंग्यात्मक ढंग से उजागर करना ही वास्तव में असंगत नाटकों का मूल उद्देश्य है। डॉ॰रामसेवक सिंह ने असंगत नाटकों के उद्देश्य के बारे में लिखा है- "ऐब्सर्ड मंच उस विश्वव्यापी स्वयःस्फूर्त आंदोलन का एक अंग है जिसमें जीवन की अपरिहार्य विडम्बनाओं तथा उसकी निरर्थकता से क्षुब्ध मनुष्य की असहाय स्थिति का चित्रण ही प्रधान उद्देश्य है।"[40] आज के विसंगत परिवेश में जीने वाले मनुष्य का जीवन अनेक असंगतियों से भरा हुआ है, जिससे वह ठीक ढंग से जी भी नजीं सकता और ठीक ढंग से मर भी नहीं सकता। असंगत नाटकों में मनुष्य की इसी छटपटाहट को वाणी दी जाती है।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि-

* हिन्दी में प्रयुक्त "असंगत" या "विसंगत" शब्द अंग्रेजी के ऐब्सर्ड (Absurd) के पर्यायावाची शब्द हैं तथा ऐब्सर्ड ड्रामा (Absurd Drama) के लिए हिन्दी में "असंगत नाटक" शब्द-प्रयोग विशेष प्रचलित है।
* असंगत नाटक स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य की एक अद्यतन प्रवृत्ति है, जिस पर पाश्चात्य ऐब्सर्ड नाट्य परम्परा का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है।
* असंगति मानव जीवन का एक ऐसा अविभाज्य हिस्सा है, जो समसामयिक युग में व्यक्ति के सामाजिक , राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भावनिक तथा स्त्री-

पुरुष सबंधों में दृष्टिगोचर होता है। मानव जीवन के इस विसंगत बोध को असंगत नाटककारों ने अपने नाटकों में रुपायित किया है।

* पारम्परिक नाटक और असंगत नाटक में कथ्य, शिल्प तथा शैली में काफी अंतर दिखाई देता है।
* मनोविज्ञान के धरातल पर असंगत नाटकों में पात्रों की सृष्टि मुख्यतया असामान्य (Abnormal)व्यक्तित्व के रुप में की जाती है।
* शिल्प की दृष्टि से असंगत नाटकों के संवाद और भाषा विशिष्ट होते हैं, जो मानव के खंडित जीवन को हरकत की भाषा में व्यक्त करते हैं।
* असंगत नाटकों का मंच पारम्परिक नाटकों के मंच से कुछ भिन्न होता है। प्रतीकात्मकता सांकेतिकता तथा व्यंग्यात्मकता इसकी अपनी विशेषताएँ हैं।
* मानव जीवन की असंगतियों को नग्न यथार्थ के रुप में चित्रित करना इन नाटकों का प्रमुख उद्देश्य है।

<u>संदर्भ</u> -

1· संपा·डॉ·विजयकांत धर दुबे, "हिन्दी नाटक : प्राक्कथन और दिशाएँ"(डॉ·नरनारायण राय, "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक : प्रवृत्ति और विश्लेषण", लेख ) प्र·सं·1985, पृ·63-64·

2· डॉ·सत्यवती त्रिपाठी, "आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रयोगधर्मिता", प्र·सं·1991,पृ·11

3·

पृ·10

4· संपा·सत्यप्रकाश, एवं बलभद्रप्रसाद मिश्र "मानक अंग्रेजी-हिन्दी कोश" प्र·सं·1971 पृ·7

5· संपा·( प्र·) रामचंद्र वर्म्मा, "मानक हिन्दी कोश," पहला खंड, प्रथम संस्करण पृ·220

6· वही, (पाँचवा खंड) पृ·99

7· "ABSURD is a term used originally to describe a violation of the rules of logic. It has acquired wide and diverse connotations in modern theology, philosophy, and the arts in which it expresses the failure of traditional values to fulfill man's spiritual and emotional needs'.

- By Grolier, 'The Encyclopedia Americana', Vol.1.First published in 1829, Page - 57

8. "Absurd is that which is devoid of purpose..cut off from his religious, metaphysical, and transcendental roots, man is lost; all his actions become senseless, absurd, useless."
- संपा·डॉ·नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच" (डॉ·किरनचंद्र शर्मा, "हिंदी असंगत नाट्यःभूमिका तथा विधान", लेख से उद्धृत ) प्र·सं·1981, पृ·97

9· डॉ·गोविंद चातक, "रंगमंच:कला और दृष्टि" प्र·सं·1976,पृ·105

10· संपा·नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच", (डॉ·गिरीश रस्तोगी , "असंगत नाटक और उसका रंगमंच", लेख ) प्र·सं·1981, पृ·113

11· डॉ·रामजी तिवारी, "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी समीक्षा में काव्य-मूल्य" प्र·सं·1980,पृ·284

12. "Life is like a glass-house where the shadows of reality invisibly get mixed up and confuse the onlooker. On the whole reality is vague and absurd like dreams."
- Ram Sevak Singh, 'Absurd Drama', First Edition 1973, Page-17

13· देवराज उपाध्याय, "साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन" प्र·सं·अनुल्लिखित, पृ·92

14· डॉ·शिवराम माली, "स्वच्छन्दतावादी नाटक और मनोविज्ञान" प्र· सं· 1976, पृ·35

15· संपा·नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच" ( डॉ·नरनारायण राय, "असंगत नाट्य और जीवन संदर्भ", लेख ) प्र·सं·1981, पृ·77

16. By-J.N.Mundra & Dr.S.C.Mundra, 'A History of English literature', Vol.111, Edition-1987, Page 595

17. '...This divorce between man and his life, the actor and his setting, truly constitutes the feeling of Absurdity.'
-संपा·नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच" ( डॉ·किरनचंद्र शर्मा, "हिन्दी

असंगत नाट्यःभूमिका तथा विधान", लेख से उद्धृत ), प्र·सं·1981, पृ·96

18· संपा·नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच", (डॉ·प्रेमपति, "असंगत नाट्य आंदोलन", लेख से उद्धृत ) प्र·सं·1981, पृ·27

19· वही, पृ·31

20· डॉ·नरनारायण राय, "नटरंग विवेक", प्र·सं·1981, पृ·84

21· डॉ·जयदेव तनेजा,"हिन्दी रंगकर्मः दशा और दिशा", प्र·सं·1988,पृ·342-343

22· संपा नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच", ( श्री·बैजनाथ राय,"असंगत नाट्यःऐतिहासिक पहचान", लेख ) प्र·सं·1981, पृ·43

23· संपा·नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच", ( डॉ·प्रेमचंद गोस्वामी, असंगत नाटक और भारतीय जीवन" लेख ) प्र·सं·1981, पृ·144

24· संपा·नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच", ( डॉ·किरनचंद्र शर्मा,"हिन्दी असंगत नाट्यःभूमिका तथा विधान",लेख ) प्र·सं·1981, पृ·98

25· संपा· नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच", (कमलेश्वर, "असंगत नाटकःयुद्धों के अवशेष और दस्तावेज", लेख), प्र·सं·1981, पृ·9

26· संपा·डॉ·शिवराम माली/डॉ·सुधाकर गोकाककर, "नाटक और रंगमंच" (डॉ·चंदूलाल दुबे अभिनंदन ग्रंथ), [डॉ·केशव मुतालिक (अनुवादःडॉ·सरजूप्रसाद मिश्र) का "अमरीकी रंगमंचःएक सिंहावलोकन", लेख] प्र·सं·1979, पृ·74

27· संपा·नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच", (डॉ·चंद्र, "असंगत हिन्दी नाटक और रंगमंच,"लेख ), प्र·सं·1981, पृ·126

28· डॉ·गोविंद चातक, "आधुनिक हिन्दी नाटक : भाषिक और संवादीय संरचना", प्र·सं·1982, पृ·92

29· डॉ·श्रीमती रीताकुमार,"स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक मोहन राकेश के विशेष संदर्भ में", प्र·सं·1980, पृ·159

30· संपा·नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच", ( डॉ·चंद्र "असंगत हिन्दी नाटक और रंगमंच", लेख ) प्र·सं·1981, पृ·127

31· डॉ·गोविंद चातक,"रंगमंचःकला और दृष्टि", प्र·सं·1976, पृ·106

32· संपा· नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच", ( डॉ·रामसेवक सिंह,"असंगत नाट्य शैली", लेख ) प्र·सं·1981, पृ·74

33· डॉ·अज्ञात, "भारतीय रंगमंच का विवेचनात्मक इतिहास", प्र·सं·1978, पृ·84

34· संपा·नरनारायण राय, "असंगत नाटक और रंगमंच", ( कमलेश्वर,"असंगत नाटकःयुद्धों के अवशेष और दस्तावेज", लेख) प्र·सं·1981, पृ·14

35· संपा·नरनाराण राय,"असंगत नाटक और रंगमंच", (डॉ·किरनचंद्र शर्मा, "हिन्दी असंगत नाट्यःभूमिका तथा विधान", लेख ) प्र·सं·1981, पृ·98

36· डॉ·रमेश गोतम, "हिन्दी के प्रतीक नाटक", प्र·सं·1980, पृ·42

37· डॉ·लक्ष्मीनारायण लाल, "रंगभूमि : भारतीय नाट्यसौंदर्य, प्र·स·1989, पृ·68

38· डॉ·रामसेवक सिंह, "एब्सर्ड नाट्य-परम्परा", प्र·सं·1970, पृ·109

39· डॉ·गोविंद चातक,"आधुनिक हिन्दी नाटकःभाषिक और संवादीय संरचना",प्र·सं·1982 पृ·26

40· डॉ·रामसेवक सिंह, "एब्सर्ड नाट्य-परम्परा", प्र·सं·1970, पृ·10-11·